P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-3* November- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संत वील्होजी महाराज की भक्ति भावना

सारांश

भारतीय भूमि पर अनेक संत महात्माओं ने जन्म लिया। उन्हीं महान संतों में से एक महान संत हो गए है। संत वील्होजी महाराज संत वील्होजी संत रूप में बड़े ही चमत्कारी व दैवीय स्वभाव के धनी थे। उनका जन्म रेवाड़ी में हुआ और उनके माता–पिता ने गुरूओं के एक टोले को उन्हें ईश्वर की सेवा के लिए दे दिया था। वील्होजी महाराज आंखों से दृष्टिहीन होते हुए भी अपनी मन की असीम शक्ति के मालिक थे। उन्होंने जाम्भोजी को अपना गुरू स्वीकार कर निर्गुणी शाखा के अन्तर्गत विश्नोई सम्प्रदाय की शिक्षाएं ग्रहण की।

मुख्य शब्द : भक्ति की उद्भावना व परिभाषा, निर्गुण सगुण भक्ति, सन्त भक्तिधारा में सन्त कवि वील्होजी महाराज का अविर्भाव, वील्होजी सम्प्रदाय और उनकी भक्ति भावना।

सविता अधाना
सह प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गाँधी विश्वविद्यालय,
मीरपुर, रेवाड़ी, हरियाणा

प्रस्तावना

भक्ति की धारा का परस्फुटन भारत के पूर्व मध्यकाल में जहाँ बहुत अधिक गति से प्रवाहित हुआ वहीं यह धारा अन्य साहित्यिक व धार्मिक रूप लेकर आज बह रही है। भक्ति के मूल में भगवान के प्रति मानव का प्रेम व समर्पण है। जो अपने आराध्य से इस भवसागर से पार लाने के लिए विनम्र आग्रह करता है। भारतीय संस्कृत में भक्ति भावना रची–बसी है। यहाँ के लोग भगवान के अलग–अलग रूपों की आराधना अलग–अलग भक्ति दर्शनों के अन्तर्गत करते है। जैसे अप्रैल वादी भक्तिदर्शन, द्वैतवादी, संगुण भक्ति की आदि भक्ति हमारे या शास्त्रों, उपनिषदों से हमें प्राप्त होती है। भक्ति के संदर्भ में ही निर्गुण मत को मानने वाले भक्त संत कहलाए और उन्हीं संतों में से एक महान संत हुए संत विल्होजी महाराज

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य निम्नवत् प्रस्तुत है।

1. भारतीय भक्ति के मूल में स्थापित मूल कारणों से पाठकों को अवगत कराना।
2. सगुण व निर्गुण भक्ति के दर्शनों को बताते हुए दोनों के मध्य अन्तर पर प्रकाश डालना।
3. सन्त परम्परा में हुए मुगल काल के पश्चात् हुए सन्त वील्होजी की वाणी पर प्रकाश डालना।
4. पाठकों को सन्त वील्होजी की भक्ति भावना से अवगत कराना।

उपकल्पना

प्रस्तावित शोध के विषय में यह परिकल्पना की गई है कि इतिहास के गर्त में छुपे सन्त वील्होजी की वाण व उनकी भक्ति से और मानव समुदाय पर पडे उनके भक्ति के सार्थक प्रभाव को प्रदर्शित करना और मानव मात्र को भक्ति की शक्ति को पुनः अनुभव कराना।

शोध प्रविधि

प्रस्तावित शोध पत्र की अध्ययन विधि मुख्य रूप से व्याख्यात्मक विवेचनात्मक है जो सरकारी एवं गैर सरकारी स्त्रोत से प्राप्त सूचनाओं हेतु पुस्तकों, शोध पत्रों, इंटरनेट आदि का आश्रय लिया गया है।

साहित्यावलोकन

आर्यों की अनेक सभाएँ तथा परिषदें हुआ करती थीं, जिसमें उपस्थित किये गए तर्क–वितर्क एवं दार्शनिक विवेचन के परिणामस्वरूप 'ब्राह्मण', आरण्यक तथा उपनिषद् नामक भागों की रचना हुई। जीवात्मा तथा अव्यक्त प्रकृति की भावना का उदय संभवतः इसी अवधि में हुआ। कर्मफल तथा जन्मांतरवाद की कल्पना के आधार पर कर्म–बंधनों से जीवात्मा को उन्मुक्त करने के उपाय सोचे जाने लगे। कर्मजाल से जीवात्मा को उन्मुक्त करने के उपाय सोचे जाने लगे। कर्मजाल से पृथक रहकर परमात्मा चिंतन में तल्लीन रहने के लिए तपादि की

व्याख्या की गयी। वैदिकोपासना, ध्यान–योग के रूप में परिणत हो चली, जिससे श्रद्धा–भक्ति द्वार उन्मुक्त हो गया।[1] मोनियर विलियम्स ने 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' से की है, इसके आधार पर कहा जा सकता है कि भक्ति भावना आर्यों के दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमषः श्रद्धा–उपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान के ऐश्वर्य में भाग लेना (भज= भाग लेना) जैसे व्यापक भाव में परिणत हुई। वैसे भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'ष्वेताष्वेतर उपनिषद्' (6/33) में मिलता है।[2]

भक्ति का सम्बन्ध भक्त और भगवान का तादात्मय है, दोनों को एक करना भक्ति की चरम सीमा है। भक्ति का सम्बन्ध दर्शन से अटूट रूप से जुड़ा है।

सर्वप्रथम आर्यों के भारत आने पर उन्हें यहाँ की यक्ष, किन्नर, गंधर्व, असुर, व्रात्य, विद्याधर आदि जातियों की नागर संस्कृति का परिचय मिला था। आर्य लोग मुख्यतः सैनिक जीवन के अभ्यासी थे और उनका जातीय जीवन ग्रामीण संस्कृति पर आधारित था। इन दोनों के मिलन और पारस्परिक आदान–प्रदान से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, जिसकी छत्रच्छाया में भक्ति–परम्परा का बीज विकसित हुआ।

वैदिक भक्ति–परम्परा के समान्तर दक्षिण में द्रविड़–संस्कृतिगर्भित पृथक भक्ति–परम्परा का सूत्रपात हो चुका था। यह परम्परा ईसा पूर्व कई शताब्दियों से चली आ रही थी। जिसमें शरणागति व समर्पण की भावना प्रबल रूप में थी, जो कालांतर में दक्षिणात्य आचार्यों द्वारा उत्तर भारत में लोकप्रिय बनी। वास्तव में ई0 सन् के प्रारम्भिक काल में ही उत्तर और दक्षिण की दोनों परम्पराओं का मिलन हो गया था, जिसका निदर्शन आडयारों तथा अडियारों के भक्ति साहित्य में सुलभ है। इसके अन्तर्गत 'पूजा' को भक्ति का मुख्य साधन माना गया है जिसे शिव की भांति तमिल भाषा का शब्द ठहराया गया है। 'भायोन' तथा 'तिरूभाल' को विष्णु का पर्याय बतलाया जाता है। भक्ति भावना के संदर्भ में पांचरात्र भी कम उल्लेखनीय नहीं है। भक्ति के ज्ञान मार्ग व भक्ति मार्ग दो रूप हैं। ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है। ज्ञान मार्ग पर चलने वाले आचार्यों ने भी ज्ञान के अनुभूति–पक्ष पर बल दिया है। बिना अनुभूति का ज्ञान, मात्र वाक्य ज्ञान है, जिससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। भक्ति को मिथ्या–माया मानने वाले तथा ज्ञानमार्ग को ही एकमात्र सच्ची साधना के रूप में स्वीकार करने वाले शंकराचार्य ने ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया है– 'अहम् ब्रह्मस्मि'[3] का ज्ञान मात्र तो निष्फल ही रहता है, सिद्धि तो तब होती है जब यह ज्ञान अनुभव में पर्यवसित हो जाता है।

'अनुभवावसानत्वात् ब्रह्मज्ञानस्य'।[4] अवतारवाद को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप सगुण को एक साकार आलंबन मिल जाता है जिसके कारण उसे सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी सहज स्वीकार कर सकता है। निर्गुण भक्ति का आलंबन निराकार है।

निर्गुण और सगुण भक्ति का दार्शनिक रूप में अद्वैत व द्वैत रूप में प्रतिष्ठित है। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति दृष धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगा कर हुई जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाए।' दृष्यते अनेन इति दर्शनम।[5] डॉ0 विजय

भारत में दर्शन का प्रयोग चार्वाक को छोड़कर कर आत्मदर्शन के लिए होता है या ब्रह्मदर्शन के लिए ईशावास्योपनिशद् में कहा गया है–

''हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्व पूशन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[6]''

भक्ति के विषय अर्थ दर्शन में समाहित होकर साधक और साध्य का अन्तःसंबंध स्थापित हो जाता है।

भक्ति के रूप में संतों और भक्तों का निर्गुण–सगुण में बंटवारा जितना विचारधारा पर आधारित है, उससे कई गुणा ज्यादा इसका सामाजिक आधार था।

सन्त भक्तिधारा में सन्त कवि वील्होजी महाराज का आविर्भाव

संत वील्होजी निर्गुण भक्तिधारा के अन्तर्गत आने वाले एक ऐसे सन्त, भक्तकवि व समाज सुधारक, प्रकृति प्रेमी सन्त है, जिनका आविर्भाव भारत की भूमि पर सन् 1532 में हुआ। इस समय भारतीय समाज अनेक धार्मिक, साम्प्रदायिक, जातीय व वर्गगत संघर्षों के कारण असहिष्णुता की हवा में सुलग रहा था। तात्कालीन समाज की दशा बहुत सोचनीय बन गई थी। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 सतीश के0 कपूर के शब्दों में– 'हिन्दू समाज ने अपना प्राचीन गौरव खो दिया था और वह अनगिनत कर्मकाण्डों तथा अंधविश्वासों में ग्रस्त था।''[7] संत वील्होजी ने ऐसे विकट समय में समाज में एकता स्थापित करने की कोशिश की। संत वील्होजी महाराज का जन्म ईसा की 16वीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों के मध्य हुआ। उस समय पानीपत की प्रथम लड़ाई सन् 1526 में लड़ी हुई और दिल्ली पर बाबर ने मुगलिया झण्ड़ा फहराया। परन्तु शीघ्र ही शेरशाह सूरी ने अपनी काबलियत और बहादुरी के बल से उसके बेटे हुमायूँ के शासन से उखाड़ फेंका। दिल्ली का मुगल बादशाह राज्य से मुहताज होकर दर–दर भटकने लगा। मेवाड़ का राणा सांगा भी सन् 1527 में खानवा के युद्ध में हार चुका था। मेवाड़ के राज्य–प्राप्ति के लिए गृह–कलह शुरू हो गया था। मारवाड़ और बीकानेर के राठौड़ राजा भूमि के लिए आपस में लड़ रहे थे। मरूस्थल में एक ओर जहाँ अकाल का प्रकोप था, वहीं दूसरी ओर राजा लोग आपसी रंजिश के शिकार थे। देश के सभी भागों में ऐसी ही स्थिति थी। जहाँ एक ओर देश की राजनैतिक एकता टूट चुकी थीं वही दूसरी ओर देश की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकता भी छिन्न–भिन्न हो रही थी। ऐसे ही संकट के समय में एक संत पुरूष का जन्म हुआ जिसका नाम था संत वील्होजी।[8]

भारत–भूमि अपनी प्राचीनता, आध्यात्मिकता, विशालता और विभिन्नता में एकता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक साधु संत और विभिन्नता में एकता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। यहाँ अनेक साधु संत और पीर–फकीर हुए हैं। यहाँ ऐसे बहुत से चमत्कारी और परोपकारी पुरूष हुए हैं, जिनकी पूजा यहाँ के लोग आज तक करते हैं और उन्हें भगवान मानते हैं। ऐसे ही एक संत पुरूष थे– वील्होजी।

पानीपत का द्वितीय युद्ध सन् 1556 में लड़ा गया, इतिहास प्रसिद्ध है कि अक्टूबर में हेमू को इस लड़ाई में हराकर दिल्ली का शासन प्राप्त किया था। यह

हेमू रेवाड़ी (हरियाणा) का रहने वाला था जहाँ एक ओर रेवाड़ी का यह नौजवान योद्धा एक विशाल राज्य की कल्पना कर रहा था, वहीं रेवाड़ी में जन्मा एक युवा संत मारवाड़ में मानव–कल्याण का कार्य कर रहा था। इस युवा संत का नाम था– वील्होजी। यह बात तो सभी जानते हैं कि हरियाणा प्रदेश अपने वीरों की वीरता और स्वाभिमान के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध रहे हैं।

वील्होजी का जन्म सन् 1532 में रेवाड़ी (हरियाणा) में एक खाती (सुथार) के घर हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीचन्द्र (परसराम) और माता का नाम आनन्दाबाई था।[9] इनकी आँखें बचपन में ही चेचक रोग से खराब हो गई थी। एक बार गुजरात की ओर से वेदान्ती साधुओं की एक टोली इनके गाँव आई तो वील्होजी के माता–पिता ने इन्हें साधुओं को सौंप दिया। वेदान्तियों के साथ रहने से उन्हें 'वील्हपुरी' की उपाधि मिली। उनके शिष्य महात्मा सुरजनदास जी पूनियाँ ने उन्हें 'विठ्ठलदास' और 'विठ्ठलराय' के नाम से सम्बोधित किया है। साहबराम जी के गुरू गोविन्दराम जी ने उन्हें 'वील्हाजी' कहा है। साहबराम जी राहड़ ने तो अपने प्रसिद्ध 'जम्भसार' में उन्हें वील्हदेव कहा है।[10] लेकिन बिश्नोई सम्प्रदाय में तो आप 'वील्होजी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

वील्होजी वेदान्तियों के साथ घूमते–फिरते एक बार गाँव हिमटसर (जिला बीकानेर) में पहुँचे। सुबह वे बाहर घूमने निकले तो उन्होंने जाम्भोजी के शब्दों का पाठ सुना और एक स्त्री से पूछा तो उन्हें पता चला कि पास में 'तालवा' गाँव है, जहाँ जाम्भोजी का धाम है। यहाँ सुबह–सुबह होम होता है। वील्होजी ने अपने साथी वेदान्तियों को वहीं छोड़ा और वे जाम्भोजी के धाम 'मुकाम' पहुँच गये।

जाम्भोजी (सन् 1451–1536) के अन्तर्धान होने के आठ वर्ष बाद 1544 में वील्होजी 'मुकाम' आये थे। इसी समय उन्होंने–

'गुरू तारि बाबा,
बोह दुःख सह्या सरण्यविण्य तेरी,
करि–करि करम कुफेरा।'

नामक सारवी जाम्भोजी को निवेदन करते हुए गायी थी।[11] इससे उनकी आँखों में पुनः ज्योति आ गई, मानो ज्ञान–चक्षु खुल गये। लोगों ने यह चमत्कार देखा और उन्हें बहुत अचम्भा हुआ। उन्हें जाम्भोजी की भविष्यवाणी याद आई। उसी समय जाम्भोजी के शिष्य नाथोजी ने उन्हें पाहल (दीक्षा) देकर बिश्नोई धर्म का कर लिया था।

वील्होजी का बिश्नोई सम्प्रदाय और उनकी भक्ति भावना

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक सन्त जाम्भोजी थे। बिश्नोई समाज में यह बात प्रचलित है कि जाम्भोजी ने वील्होजी के रूप में इस धर्म में आने की तथा चलाने की भविष्यवाणी अपने जीवन काल में ही कर दी थी। जाम्भोजी ने अपने तीन शिष्यों को महंत बना दिया और चौथे शिष्य के लिए जगह खाली छोड़ दी थी। जब अन्य शिष्यों ने पूछा तो जाम्भोजी ने कहा कि मेरा चौथा शिष्य आठ वर्ष बाद यहाँ आएगा। वही पंथ की देखभाल करेगा, उसे मेरा ही रूप समझना। जब सन् 1536 में जाम्भोजी अपना शरीर लालसर में छोड़ने लगे तो शिष्यों ने पूछा 'महाराज पंथ का धणी कौन होगा तब जाम्भोजी ने पहले वाली बात पुनः दोहरा दी। उन्होंने बताया कि उनका यह शिष्य (चौथा शिष्य) उनकी सभी वाणियों व शब्दों को कण्ठस्थ कर लेगा।

जाम्भोजी महाराज ने मानवतावादी धर्म चलाया था और अनेक जन कल्याण के कार्य किये थे। जीवों को बचाने, पेड़–पौधों को लगाने व उनकी रक्षा करना, नशे को छुड़ाने आदि अनेक मानव कल्याण कार्य किये थे। गुरू द्वारा शुरू किये गये मानव कल्याण के इन कार्यों को संत वील्होजी ने भी जारी रखा।

वील्होजी के गुरू नाथोजी थे।[12]एक हस्तलिखित प्रति से पता चलता है कि सभी 'शब्द; नाथो जी को कण्ठस्थ थे फिर वील्होजी ने उन्हें अपने शिष्यों को लिखवाया था–

"अनन्त सबद सतगुरु कह्या, बरस पच्चासी परवाण।
नाथैजी कै कंठ रह्या, उनता लिखाया वील्हसुजाण।"[13]

वील्होजी भक्त के रूप में सर्वप्रथम निरंजन देव को नमन करते हैं, जिसके नामों का कोई अन्त नहीं है। ब्रह्मा और अन्य देवतागण खोजते थक गये हैं लेकिन वे इस देव का कोई आदि–अन्त नहीं खोज सके।

"पहली नंवण्य निरंजणा, जिहंका नांव अनंता
सुर ब्रंभादिक खोजतां, आदि नै लाधौ अन्त।"[14]

वह भगवान को गति रहित, अलक्ष्य और अनंत है, न आपसका कोई निश्चित स्थान है। मैं हर्ष के साथ आपको अपने हृदय में स्मरण करता हूँ क्योंकि आप देवों के भी देव हैं।

न तै रुप न जात्य कुल, न तै माय न बाप।
जुग अनंता वरतीता, रह्यौ निरालंभ आप।।[15]
अवगति अकल अलेख तूं, अनन्त अपार अछेव,
हिरदे कुवंल हरख्यो जपूं, देवा ही अति देव।।"

श्री विष्णु भगवान निर्गुण निरंकारी ही उनके आराध्य भगवान थे– वे कहते हैं, हे विष्णु भगवान! आप हमेशा थे, अब भी हैं और बार–बार आप ही प्रकट होते रहते हैं। ऐसे निरंजन देश को कोई बिरला ही पहचान पाता है। वील्होजी अपने गुरू श्री जाम्भोजी महाराज को साक्षात् कलियुग में विष्णु के दसवें अवतार मानते है। जो कि इस धरा पर संतों की रक्षा करने के लिए प्रकट हुए हैं। वे भगतों के कार्य सुधारने के लिए यहाँ पर आये हैं। मैं उन परम दातार सतगुरू जाम्भोजी महाराज का स्मरण करता हूँ जो तैंतीस कोटि देवताओं के दुःखों को हरने वाले हैं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व भी जिनकी आशा करते हैं, उन्होंने जम्बूद्वीप में ही अवतार लिया है। उन्हें छः दर्शन भी मानते हैं। मनुष्य और देवता भी प्रेम के साथ उनका स्मरण करते हैं। उन्हें भूख, प्यास, नींद आदि कुछ भी नहीं लगती। वे तो स्वयं निरंजन हैं। वील्होजी कहते हैं कि इसलिए ऐसे सतगुरू के उपदेश को सुनो जिससे पाप और धर्म का निर्णय होता है। मन में किसी प्रकार का अभिमान प्रकट नहीं होता है, जन्म और मरण की चिन्ता मिटती है।

"ज्ञांभलि सुगर तणां उपदेश, पाप धरम का कह नवेस।
मन्त्र अभिमान न आणै ग्रव, ओपति खपति संभालै स्रव।।[16]

वील्होजी भक्तों को उपदेश देते हुए कहते हैं, कि पाप तीन प्रकार से होते हैं– मन से, वचन से और कर्म से। इस प्रकार मनुष्य पाप के बन्धन में फँसता है। जो इस बंधन में फँसता है, वही पाप का फल भोगता है। बुरे काम का मन से चिन्तन करना, कहकर किसी से हत्या करवाना और स्वयं अपने हाथ से किसी की हत्या करना, इन तीनों से पाप करने वाले मनुष्य का मरने पर नरक में निवास होता है। वील्होजी अहिंसा में विश्वास करने वाले तथा छोटे से छोटे जीव की भी हत्या न करने पर बल देते हुए कहते हैं कि बिना छाने हुए जल का प्रयोग करने से अनेक सूक्ष्म जीवों की हत्या होती है। इस पाप का कोई अन्त नहीं है। जो मनुष्य उत्तम खाद्य पदार्थ छोड़कर माँस का भक्षण करता है, उसकी बुद्धि नष्ट होती है। वह मरने पर नरक में जाता है।

'अणछाण्यो पाणी वावरै, अवही पाप अनंत करै।
अभख भखयो व बुध्यनास, मुवां पछै दोर मांवास।।''[17]

संत कवि ने समाज में आदर्श स्थापित करने व लोगों को सदाचारी व पवित्र बनाने व अनैतिक व अमर्यादित बातों पर रोक लगाने के लिए कटाक्ष किये ताकि लोग दुराचार, नशाखोरी व अन्य सभी पापयुक्त व अनैतिक बातों को त्याग दे क्योंकि इन सब गलत बातों से किसी भी समाज का पतन हो जाएगा। वे कहते हैं कि वृद्धावस्था में विवाह करना, आचरण भ्रष्ट होना, अपाहिज जीवों पर चोट करना, हरे वृक्षों को काटना ये सब बातें पाप की शुरुआत है। जो मुक्ति और धर्म की रीति को छोड़कर अन्य स्त्रियों से प्रेम करता है और अपनी स्त्री को छोड़ता है, ऐसे मनुष्यों को मुक्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। जो न कभी स्नान करता है, न कभी ब्रह्मचर्य का पालन करता है, ऐसे लोग विष्णु भगवान के नाम का अपनी जीभ से उच्चारण नहीं कर सकते हैं, वे जुल्मी सो अपनी जीभ से पाप–कथन ही कहते हैं। इसलिए जो मनुष्य कारण क्रिया को बहुत मानता है और दान–पुण्य भी बहुत करता है लेकिन अभक्ष्य (मांस) का भक्षण करता है तथा क्रोध से बोलता है, वह सुअर की योनि भोगता है। इसी प्रकार वील्होजी महाराज ने मूर्ति पूजा को भी सही नहीं बताया है।

''भूत परेती भांडै सेव, न्यान विहुणौं पूजै देव।
भरम्यौ धोकै काठ शशाण,
हलति पलति जीवड़ नै ह्यण्या।।''[18]

वील्होजी के मतानुसार भगवान की भक्ति के लिए मनुष्य मन निर्मल व स्वच्छ होना चाहिए। क्योंकि परमात्मा को मन की निर्मलता पसंद है इसलिए हम केवल ष्वेत व साफ सुथरे कपड़े पहन कर उसे नहीं प्राप्त कर सकते।

''सीलता पती कीजै खड़ौ, पगि पर जल्म दाझ का पड़ो।
पिंड परै जल्य जे दाझै सोय, गुर क अबकि जैसा फल होय।।''[19]

उनके मतानुसार मनुष्य को संसार के मोहपाश में फँसकर गलत व अज्ञान के मार्ग पर चलकर अनेक प्रकार के प्रपंचों में फंसकर अपने जीवन के परम लक्ष्य से विमुख हो जाना पड़ता है।

इसलिए मनुष्य को समय रहते सद्गुरू के चरणों को पकड़ लेना चाहिए। क्योंकि सद्गुरू के ज्ञान के अभाव में हमारे ज्ञान चक्षु नहीं खुल सकते। गुरू के दिखलाए रास्ते पर चलना ही मनुष्य के लिए हितकर है क्योंकि यदि प्राणी अपने वंश की मान–बढ़ाई और कुमार्ग को छोड़कर गुरू के बताये मार्ग पर चले तो निश्चय ही तू स्वर्ग के विमान में चढ़ेगा।

''गुरू दया करि दाखवै, हेलै नै गति अयोण।
होये हरश करि सांभली, सुरग तणां सहनांण।।''[20]

वील्होजी मनुष्य को बताते हैं कि यदि वह मोक्ष की कामना रखता है तो उसे जिस कर्त्तव्य के लिए गुरू कहते हैं, उसको ह्रदय में हर्ष करके देखो। यदि तुम्हें स्वर्ग की कामना है तो बार–बार विष्णु का स्मरण करो। विष्णु भगवान को याद करके धम्र को अपने मन में रखो। अच्छे मार्ग पर चलकर पाप का त्याग करो, ज्ञान की खोज के लिए गुरूदेव की आज्ञा मानो और ज्ञानी संतों की सेवा करो।

''विसन संभाल्य धरम चीत धरी,
सुपह पिदाण्य पाप परहरी।
न्यान खोज्य भानुं गुरूदेव,
अकल प करौ साध की सेव।।''[21]

विष्णु के नाम स्मरण पर जोर देते हुए कवि कहता है कि इस संसार में चतुर्भुज अर्थात् विष्णु का ध्यान करना चाहिए। जिससे अच्छे कर्म हो सके, लोगों को चोरी, जुआ आदि छोड़कर गुरू का नाम लेना चाहिए। इन्हीं दो नामों में अधिक गुणों की प्राप्ति सम्भव है। लिखी हुई संसार की भाग्य की रेखाएँ मिटेगी तथा देवों का स्थान मिलेगा। जीवों का दुःख प्रायः समाप्त हो जाएगा। इसलिए संसार के सभी लोगों को विष्णु के नाम का स्मरण करना चाहिए।

''चचा चौखा चालीयै, चित्त चित्रभुज लाय।
चोरी जारी परहरौ, अै गुरू की नांवै दाय।
इस लिखीया संसारि, मेटीसी आवा फेर।
लहिसी सुरां की गोठड़ी, मीटिसी जीव का जोखा।
विसन जपौ संसारि, चचा चालौ चौखा।।''[22]

भक्ति में मन की एकाग्रता को बहुत आवश्यक बताते हुए कवि कहता है कि हे भगवान! अपने भक्तों को इतनी शक्ति प्रदान करो ताकि वे अपने मन को वश में रखना सीख जाएं। भक्तों को अपने मन को स्थिर रखना चाहिए, क्योंकि यह दसों दिशाओं में भटकता रहता है। शरीर में हंस रूपी आत्मा निवास करती है, जिससे शरीर रत्न के समान प्रतीत होता है। जिन रत्न रूपी शरीर में आत्मा स्थित है, उसे सच्चाई एवं अच्छे कर्मों में विश्वास करना चाहिए अन्यथा उसे पश्चाताप ही करना पड़ता है। इस संसार में सच की पूछ है, झूठ की नहीं। अतः इन सबको देखकर ही विष्णु का जाप एवं जीव को स्थिर रखना चाहिए।

''यथा थिर करि राखो जीवड़ौ, दह डीगै न मंन
हंस काया मां पाहणौ, ताथै तन रतंन
ताथै तन रतन, औ पिंड पड़िसी काई।
सुक्रत पहली संच्य, पछै पछतायसी भाई।
साच सही संसार मां, मुखि अभरवल नहीं भारण्य।
विसन जपौ संसारि, यथा जीव थिर करि राख्य।''[23]

मनुष्य को सत्य की पहचान कराते हुए कवि कहता है कि हे मनुष्य! तुम भ्रम को छोड़कर भगवान का

स्मरण करो, जैसे तोता नलकी के भ्रम में फंस जाता है, ऐसे ही मनुष्य अन्य देवों के भ्रम में फंसता है। भ्रमवश लोग पत्थर को देव मानते हैं लेकिन साधुजनों की सेवा नहीं करते हैं। वे निर्जीव पत्थर के सामने जीवों की हत्या करते हैं, ऐसे लोग बिना पानी ही डूबेंगे। भ्रमवश स्त्रियाँ दीवारों पर मँढे, चित्रों की पूजा करती हैं और उन्हें भोग लगाती हैं लेकिन भोग विलास को जानने वाले मनुष्य हैं, जो पास ही खड़े हैं, वे उनको नहीं पूजती हैं। भ्रमवश लोग तीर्थ जाते हैं, लेकिन देव उनको कहीं नहीं मिलते। जो भ्रमवश, वीर, जोगनियों और तुच्छ पार होंगे, जब वे विष्णु भगवान की सेवा करेंगे। कवि कहता है कि लोग भ्रम में फँसे हुए हैं उन्हें कौन समझावे, जब उस भ्रम को छोड़कर वे भ्रम रहित हो जायेंगे तब ही भगवान के चरणों में उन्हें शरण मिलेगी।

"भरम उपाय पाहण देव थरपै, साध सेवा नहीं जोणी।
निरजीव आगै सरजीव मारै, बूडि गया विण्य पाणी।
भरमी नारि भींति कूं पूजै, ले ले भोग लगावै।
भोग विलास स्वाद रस जोणै, ढ़िग ऊभौ बिल्लावै।
भरमे लोग तीरथ कूंचाले, अठसठि धरि ही बताया।
लोक अजाणं आन कै चाहूँ, ढूँढत फिरत नै पाया।
भरम उपाय वीरजणं जोगण्य, छाड़ि भरम तुछ देवा।
पार गिराय तब पहुँचै प्यारा, क्रत विसन तत सेवा।
वील्ह कहै मुगध्य नर भरमे, कुंण किसे समझावै।
भरम छाडि जदि होय निभरमां, जण हरि चरणे आवै।"[24]

भक्ति अध्यात्म के दृष्टिकोण से संत कवि वील्होजी के 'हरजस' विषेश महत्त्व रखते हैं। इन हरजसों में हरि के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। ये हरजस आज भी लोक जीवन की थाती है और विषेश अवसरों पर गाये जाते हैं। कवि का सम्बन्ध मन की भावना और भक्ति से है। वे जाति–पाति से दूर राम–रहीम को एक मानने वाले थे।

"अलाह अलेख निरंजन देव,
किण्य विहय करुं तुम्हारी सेव।
विसन कहूँ जाकौ विस्तार,
किसन सोई सिरज्यौ संसार।।[25]

वील्होजी महाराज की भक्ति भावना बहुत आदर्श व अपने अराध्य के प्रति पूर्णरूप से समर्पित थी। उन्होंने मानव को भक्ति मार्ग पर लाने के लिए अनेक दोहों, चौपाइयों व अनेक छन्दों आदि के माध्यम से अपनी वाणी में प्रभु का यशोगान किया।

निष्कर्ष

संत वील्होजी महाराज साधारण वेष में भी एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके इन सभी कार्यों से राजस्थानी भाषा साहित्य समृद्ध हुआ है, क्योंकि उनकी समस्त वाणी मरूभाषा में है। कवि वील्होजी ने 17वीं सदी में थी भाषा को षुद्ध बोलने पर विचार किया था। ऐसा काम उनसे पहले और बाद में किसी अन्य कवि ने नहीं किया। इससे पता चलता है कि वे कितने जागरूक कवि थे, संत थे और भक्त थे।

आज विश्व में बिगड़ते हुए पर्यावरण को देखकर चिंतित है विश्व में आज बिगड़ता हुआ पर्यावरण पृथ्वी के अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है जिसके लिए पर्यावरण संरक्षण के लिए पेड़ों की रक्षार्थ 'चिपको आन्दोलन' जोरों पर है परन्तु इस पर सर्वप्रथम कार्य संत–कवि वील्होजी ने ही किया था। बिश्नोई धर्म में तो वन्य–जीव संरक्षण और पर्यावरण रक्षार्थ कई आवश्यक नियम है। यथा वृक्षों न काटना, थाट को अमर रखना (भेड़ बकरियों को न मारना) बैल को बधिया न बनाना, पानी छानकर पीना, प्रातःकाल हवन करना आदि। वृक्षों की रक्षा के लिए दो विश्नोई सम्प्रदाय की स्त्रियों 'करमा' और 'गोरा' के वि0स0 1661 में बलिदान का वर्णन सर्वप्रथम वील्होजी ने ही अपनी साखी में किया है।

वील्होजी की भक्ति में लोक भक्ति का सहज रूप दिखाई पड़ता है। वे सन्देश देते हैं कि भक्ति का मार्ग अपनाकर हम सुधरें तो समजा भी सुधरेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास संपादक डॉ0 हरदयाल नेशनल प0 हाऊस, पृष्ठ–81*
2. *वहीं, पृष्ठ– 82*
3. *वहीं पृष्ठ– 107*
4. *वहीं पृष्ठ– 107*
5. *डॉ0 विजयपाल शास्त्री, बौद्ध प्रमाण मीमांसा – पीढ़िका, सत्यम प0 हाऊस*
6. *वहीं, पृष्ठ–111*
7. *प्रो0 मनजीत सिंह सोढ़ी, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मोडरन पब्लिशिंग पृष्ठ–92*
8. *श्री महर्शि स्वामी वील्होजी का जीवन चरित्र, वि0स0 1970 (परिशिष्ट क)*
9. *श्री जम्भसार साहबराम जी राहड़ प्रयाग वि.स. 1978, पृ0 प्रथम, पृष्ठ–1*
10. *संत कवि वील्होजी और उनकी वाणी पर लेखक द्वारा राजस्थान का संत साहित्य, राष्ट्रीय संगोष्ठी 24 से 26 मार्च, 1993 जोधपुर में पत्र वाचन*
11. *श्री जम्भदेव चरित्र गानु–स्वामि ब्रह्मानन्दजी, प्रकाशक चौधरी (धर्म सिंह जी इटावा, 1–9–1901, भूमिका पृष्ठ–2*
12. *जाम्भोजी सबद श्री वायक–ह–लि–ग्रंथ, वि.स. 1928 (व्यक्तिगत संग्रह)*
13. *वील्होजी की वाणी सम्पादक तथा टीकाकार डॉ0 कृशणलाल बिश्नोई प्रकाशक जम्भाजी साहित्य अकादमी बीकानेर, पृष्ठ–43*
14. *डॉ0 कृष्णलाल बिश्नाई, सम्पादक तथा टीकाकार, वील्होजी की वाणी, प्रकाशक जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बिकानेर से उद्धृत दोहे 14 से 24।*